www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
बुधवार 13 फरवरी 2019

दैनिक जागरण

सफलता की मंजिल अनुशासन के मार्ग से ही मिलती है

अव्यवस्था की आग

अव्यवस्था की अनदेखी कैसे घातक परिणाम सामने लाती है, इसका एक और उदाहरण है देश की राजधानी दिल्ली के एक होटल में आग लगने के कारण 17 लोगों की मौत। ये मौतें इसलिए हुईं, क्योंकि जिन पर भी इस होटल को नियम-कायदे के हिसाब से चलाने देने की जिम्मेदारी थी उन सबने हद दर्जे की लापरवाही का परिचय दिया। इसीलिए इस अग्निकांड को हादसा कहना उसकी गंभीरता को कम करना है। यह हादसा नहीं, जिम्मेदार लोगों की लापरवाही का खौफनाक नतीजा है। यह लापरवाही की पराकाष्ठा ही है कि जिस अर्पित पैलेस होटल को चार मंजिला होना चाहिए था वह छह मंजिला बना लिया गया था और जिसमें सुरक्षा के सभी उपाय होने चाहिए थे उसमें आपातकालीन द्वार एक तो संकरा था और दूसरे उस पर ताला जड़ा हुआ था। इस होटल में आग से बचाव के प्रबंध भी दिखावटी थे। यही कारण रहा कि बचाव के उपाय नाकाफी साबित हुए। इस होटल में आग का कहर उपहार सिनेमाघर में घटे भयावह अग्निकांड की याद दिलाने वाला ही नहीं, यह भी बताने वाला है कि देश की राजधानी में व्यावसायिक गतिविधियां किस तरह अभी भी मनमाने तरीके से चलाई जा रही हैं। क्या दिल्ली का शहरी ढांचा आज भी वैसा ही अव्यवस्थित और अराजक है जैसा उपहार कांड के समय था? हाल में दिल्ली में अवैध तरीके से चलाए जा रहे कारखानों में आग लगने की कई घटनाएं सामने आ चुकी हैं। एक घटना तो उसी इलाके में घटी थी जहां होटल अर्पित पैलेस है। ऐसा लगता है कि दिल्ली के शासन-प्रशासन ने पुरानी घटनाओं से कोई सबक सीखना उचित नहीं समझा। इससे भी शर्मनाक बात यह है कि अभी भी ऐसा नहीं लगता कि जरूरी सबक सीख लिए गए हैं। दिल्ली सरकार और नगर निगम के आला अफसरों के बयान कर्तव्य की इतिश्री करते ही अधिक दिखते हैं।

दिल्ली के होटल में आग लगने के कारणों की जांच के आदेश वैसे ही नाकाम-निष्प्रभावी साबित हों तो हैरत नहीं जैसे इसके पहले के मामलों में साबित हुए। आखिर कितने व्यावसायिक स्थलों में आग के जानलेवा कहर के बाद इस बुनियादी बात को समझा जाएगा कि अगर ऐसे स्थल नियम-कानूनों के साथ सुरक्षा उपायों की घोर अनदेखी करके चलेंगे तो वे तबाही का कारण ही बनेंगे? यह नाकारापन ही है कि बेतरतीब शहरी ढांचे और सार्वजनिक सुरक्षा की उपेक्षा तब हो रही है जब उन्हें सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए। शहरी ढांचे का नियमन करने वाले न केवल अनियोजित विकास की अनदेखी कर रहे हैं, बल्कि सार्वजनिक सुरक्षा को भी ताक पर रख रहे हैं। यही कारण है कि कभी किसी होटल में आग लगने से तबाही मचती है तो कभी किसी अस्पताल अथवा कारखाने में। प्रत्येक घटना-दुर्घटना के बाद आमतौर पर यही सामने आता है कि तबाही से दो-चार हुए ठिकाने पर या तो अवैध निर्माण होने दिया गया था या फिर दुर्घटना से बचाव के उपाय केवल कागजों पर थे। इससे भी बुरी बात यह है कि जांच के नाम पर केवल खानापूरी होती है। बेहतर हो कि जिम्मेदार लोग यह समझें कि व्यावसायिक ठिकानों अथवा बहुमंजिली इमारतों में नियम-कानूनों की उपेक्षा का मतलब है उन्हें जानबूझकर लाक्षागृह में तब्दील करना।

औली में खेलों का सच

चमोली के विश्व प्रसिद्ध पर्यटन स्थल औली में शीतकालीन खेलों की मान्यता पर संकट के बादल छाए हुए हैं। यदि फेडरेशन ऑफ इंटरनेशनल स्कीइंग (फिस) से कोई ऐसा फैसला हुआ तो यह उत्तराखंड के लिए किसी बड़े झटके से कम नहीं है। निश्चित ही इससे उत्तराखंड में पर्यटन को भी नुकसान होगा, लेकिन सवाल यह है कि औली में इन हालात के लिए क्या सिर्फ प्रकृति जिम्मेदार है या कुछ और भी बाते हैं। कुदरत ने औली को बहुत संपन्न बनाया है। औली में 1300 मीटर लंबा और 45 मीटर चौड़ा स्लोप है। स्लोप पर 1250 मीटर वर्टिकल ड्रॉप है। स्की स्लोप में खिलाड़ियों के लिए चढ़ने को स्की लिफ्ट है। इसके अलावा खिलाड़ी, आयोजक, पर्यटक और दर्शकों के रहने के लिए भी पर्याप्त सुविधाएं मौजूद हैं। स्नो मेकिंग मशीन भी यहां लगी है और सड़क बंद होने की स्थिति में रोपवे से औली पहुंचा जा सकता है। वर्ष 2010 में औली की ढलानों को फिस ने शीतकालीन खेलों के लिए पूरी तरह फिट मानते हुए इसे 2019 तक मान्यता दी। जब यहां पहली बार वर्ष 2011 में इंटरनेशनल सैफ गेम्स आयोजित हुए तो औली देश-दुनिया के आकर्षण का केंद्र बन गया, लेकिन इसके बाद यहां इस तरह की कोई प्रतियोगिता आयोजित नहीं की जा सकी। कम बर्फबारी के कारण वर्ष 2012 में इंटरनेशनल फिस रेस और वर्ष 2014 में जूनियर नेशनल गेम्स दो बार रद करने पड़े। फिस की मान्यता के नियमों में स्पष्ट है कि इन ढलानों पर नेशनल गेम्स का आयोजन जरूरी है। यह सही है कि पिछले कई वर्षों से कुदरत औली पर मेहरबान नहीं रही, लेकिन क्या सिर्फ यही एक वजह है। ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसमें कुछ न कुछ लापरवाही आयोजकों की ओर से भी रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि प्रतियोगिता का वक्त ज्यादातर फरवरी अथवा मार्च में तय किया गया और फरवरी एवं मार्च आते-आते ढलानों पर नाममात्र की बर्फ ही मिल रही थी। इस पर प्रतियोगिता का आयोजन संभव नहीं था।

आवश्यक है अल्पसंख्यक को परिभाषित करना

शंकर शरण

जब तक कानूनी रूप से अल्पसंख्यक की परिभाषा स्पष्ट नहीं होती तब तक अल्पसंख्यकों के लिए किए जाने वाले सभी काम अनुचित ही कहे जाएंगे

अल्पसंख्यक मुद्दे पर वही हुआ जो दशकों से होता आया है। सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में अल्पसंख्यक अवधारणा को स्पष्ट करने की गुहार लगाई गई थी ताकि सरकारी कामकाज में विभिन्न स्तरों पर इसकी आड़ में हो रही मनमानी और अन्याय पर विराम लगाया जा सके। परंतु जैसा अब तक का अनुभव है कि यहां एक खास मतवाद या समुदाय से संबंधित कोई उचित काम करने में भी तंत्र के सभी अंग हीलाहवाली ही करते हैं। इसमें भी वही हुआ और सुप्रीम कोर्ट ने इसे परिभाषित करने का काम अल्पसंख्यक आयोग को सौंप दिया मानो वही संविधान का व्याख्याता हो! जबकि संविधान में मौजूद 'अल्पसंख्यक' शब्द को केवल संसद या सुप्रीम कोर्ट ही परिभाषित कर सकते हैं। यह भी कितनी दुःखद स्थिति है कि जो कोर्ट मामूली से मामूली मुद्दे पर भी खुद निर्णय करता है, वह एक संवैधानिक उपबंध से जुड़ी और दशकों से चली आ रही गड़बड़ी पर फैसला सुनाने से कन्नी काटता है। वस्तुतः यह भी इस समस्या की गंभीरता का ही संकेत है। भारत में यह ऐसी समस्या है जिससे तमाम अन्य समस्याएं जुड़ी हैं। उपनिषद की भाषा में कहें तो इसके समाधान में हमारी कई जटिल समस्याओं के समाधान की कुंजी है। पर सत्ता के सभी अंग इस पर खुलकर सोचने से बचते हैं जबकि देश का जनमत चाहता है कि 'अल्पसंख्यक' और 'बहुसंख्यक' की परिभाषा तथा विकृति से जुड़ी कानूनी विषमता दूर होनी चाहिए, क्योंकि इसी अस्पष्टता की आड़ में यहां विभिन्न दल, देसी-विदेशी संगठन और एक्टिविस्ट भारी गड़बड़ करते रहे हैं। ऐसा न तो दुनिया में अन्य किसी देश में है, न ही यह हमारे मूल संविधान में था।

समकालीन विमर्श में अल्पसंख्यक शब्द का आशय संकीर्ण हो चला है। जस्टिस राजेंद्र सच्चर की अध्यक्षता वाली समिति ने सरकारी दस्तावेज में 'अल्पसंख्यक' और 'मुसलमान' शब्दों को एक दूसरे के पर्याय के रूप में इस्तेमाल किया था। ऐसी समझ मूल संविधान की नहीं थी। फिर भी पिछली संप्रग सरकार ने इसकी अनदेखी कर सच्चर समिति की अनुशंसाएं लागू करने का फैसला किया। ऐसे नजरिये ने देश में दो प्रकार के नागरिक बना दिए हैं जिससे 'कानून के समक्ष समानता' का संवैधानिक पहलू गौण हो गया है। कुछ वर्ष पहले पश्चिम बंगाल के शीर्ष पुलिस अधिकारी ने बेधड़क कहा था कि वह समुदाय को देखकर ही हिंसा संबंधी घटनाओं पर कार्रवाई करते या नहीं करते हैं। राजनीतिक बिरादरी की भी यही स्थिति है। इससे नागरिक समानता का मखौल उड़ता है। यह सब 'अल्पसंख्यक' शब्द को कानूनी तौर पर अस्पष्ट छोड़ देने से ही हुआ। यह भी अभूतपूर्व स्थिति है कि किसी देश में अल्पसंख्यक को वह अधिकार मिलें जो बहुसंख्यक को नहीं हैं। पश्चिमी लोकतंत्रों में 'माइनॉरिटी प्रोटेक्शन' का लक्ष्य होता है कि किसी के अल्पसंख्यक होने के कारण उसे किसी अधिकार से वंचित न रहना पड़े जो दूसरों को सहज प्राप्त है। भारत में इस अवधारणा को ही उलट दिया गया है जहां अल्पसंख्यकों के लिए विशेषाधिकारों की बात होती है। यह विकृति भारत में नागरिकों को दो किस्मों में बांट देती है। एक वे जिसके पास दोहरे अधिकार हैं और दूसरे वे जिन्हें एक ही तरह के अधिकार हैं जो पहले के पास भी हैं। यह हमारे देश और समाज के लिए घातक साबित हुआ है जो समाज के कई वर्गों में जहर घोल रहा है।

अवधेश राजपूत

सच तो यह है कि भारत में इस अवधारणा की जरूरत ही नहीं थी जो यूरोपीय समाजों में नस्लवादी या सामुदायिक उत्पीड़न के इतिहास से पैदा हुई है। जबकि भारत में अंग्रेजी राज के दौरान भी ऐसा नहीं था। यहां तो गोरे अंग्रेजों, यानी अल्पसंख्यकों को ही अति-विशिष्ट अधिकार हासिल थे! उससे पहले, मुगल शासन में भी अगर कोई वंचित समुदाय था तो वह बहुसंख्यक हिंदू ही थे जिन्हें जजिया जैसा धार्मिक कर देना पड़ता था। ऐसे में अव्वल तो 'अल्पसंख्यक संरक्षण' की अवधारणा ही भारत में मतिहीन होकर अपना ली गई, जिसका कोई संदर्भ यहां नहीं था। फिर भी, जब इसे पश्चिम से ले ही लिया गया तो वहां भी इसका यह अर्थ कतई नहीं कि अल्पसंख्यकों को ऐसे विशेषाधिकार दे दिए जाएं तो कथित बहुसंख्यक के पास न हों। इससे जुड़ी तीसरी गड़बड़ी यह है कि संविधान या कानून में 'बहुसंख्यक' का कहीं उल्लेख नहीं है। इस कारण उसका कानूनी तौर पर अस्तित्व ही नहीं है! यह विचित्र विडंबना है, क्योंकि कानून में कोई चीज स्वतः स्पष्ट नहीं होती। जब लिखित धाराओं के अर्थ पर ही भारी मतभेद होते हैं तब जो अलिखित है उस मोर्चे पर दुर्गति का अनुमान ही लगाया जा सकता है। इसीलिए 'बहुसंख्यक' के रूप में कोई कुछ भी समझे, वह हमारे संविधान में कहीं नहीं है। यहां अनेक राजनीतिक, कानूनी गड़बड़ियां इसी कारण पनप रही हैं।

यहां कोई मुस्लिम या ईसाई व्यक्ति भारतीय नागरिक और अल्पसंख्यक, दोनों रूपों में अधिकार रखता है, किंतु एक हिंदू केवल नागरिक के रूप में। बतौर हिंदू वह अदालत से कुछ नहीं मांग सकता, क्योंकि संविधान में हिंदू या बहुसंख्यक जैसी कोई मान्यता ही नहीं है। निःसंदेह, हमारे संविधान निर्माताओं का यह आशय नहीं था, किंतु कुछ बिंदुओं पर ऐसी रिक्तता और अंतर्विरोध के कारण आज यह दुष्परिणाम देखना पड़ रहा है। जैसे, संविधान की धारा 29 अल्पसंख्यक के संदर्भ में धर्म, नस्ल, जाति और भाषा, यह चार आधार देती है। जबकि धारा 30 में केवल धर्म और भाषा का उल्लेख है। तब अल्पसंख्यक की पहचान किन आधारों पर हो? यह अनुत्तरित है। अतः जब तक इसे स्पष्ट न किया जाए, तब तक 'अल्पसंख्यक' नाम पर होने वाले सारे कृत्य अनुचित हैं। यह न केवल सामान्य बुद्धि, विवेक एवं न्यायिक दृष्टिकोण, बल्कि संवैधानिक भावना से भी अनुचित हैं।

आज अल्पसंख्यकों के नाम पर जारी मनमानियां संविधान निर्माताओं के लिए अकल्पनीय थीं। वे सभी के लिए समान अधिकारों के हिमायती थे। चूंकि संविधान में अल्पसंख्यकों की परिभाषा अधूरी रह गई जिसका दुरुपयोग कर नेताओं ने अपने हित साधने शुरू कर दिए। यह अन्याय मूलतः सत्ता की ताकत और लोगों की अज्ञानता के कारण होता रहा। ऐसा इसलिए भी हुआ, क्योंकि एक मूल प्रश्न पूरी तरह और आरंभ से ही उपेक्षित है कि बहुसंख्यक कौन है? ऐसे में अल्पसंख्यक की धारणा ही असंभव हो जाती है, क्योंकि 'अल्प' और 'बहु' तुलनात्मक अवधारणाएं हैं। एक के बिना दूसरा नहीं हो सकता।

इसका सबसे सरल और निर्विवाद समाधान यह है कि संसद में एक विधेयक पारित कर वैधानिक अस्पष्टता दूर कर दी जाए। यह घोषित किया जाए कि संविधान की धारा 25 से 30 में वर्णित अधिकार सभी समुदायों के लिए समान रूप से सुनिश्चित करने के लिए दिए गए थे। यही उनका आशय है। ऐसी कानूनी व्यवस्था से किसी अल्पसंख्यक का कुछ नहीं छिनेगा, बल्कि दूसरों को उनका वह हक मिल जाएगा जो उनसे सियासी छल करके छीन लिया गया। यदि हमारी संसद, सुप्रीम कोर्ट या केंद्रीय मंत्रिपरिषद इसे समाप्त कर दें तो तमाम सामुदायिक भेद-भाव, सांप्रदायिकता और देशघाती, वोट-बैंक राजनीति के खत्म होने का मार्ग खुल जाएगा।

(लेखक राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक एवं स्तंभकार हैं)
response@jagran.com

अनदेखी से उपजी त्रासदी

इस त्रासदी का वर्णन करने के लिए शब्द तलाशना मुश्किल है। उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड में जहरीली शराब ने जैसा कहर बरपाया है उसने दिल दहलाने के साथ ही हमारे भीतर आक्रोश भी पैदा कर दिया है। आखिर यह कैसा समाज है, कैसी शासन व्यवस्था है जहां जीवन को हर क्षण जोखिम में डालने का धंधा खुलेआम चल रहा है। कल्पना कीजिए कि तीन जिलों में जहरीली शराब पीने से 100 से ज्यादा लोग असमय काल के गाल में समा गए और तमाम अभी भी अपनी जिंदगी की जंग लड़ रहे हैं तो वहां कैसा मंजर होगा! जिस परिवार के सभी वयस्कों की एक साथ मृत्यु हो जाए तो उसके शेष सदस्यों की दशा कैसी होगी! अगर किसी प्राकृतिक आपदा में लोग हताहत हों तो हमें मन मारकर अपनी विवशता स्वीकार करनी पड़ती है, क्योंकि उसमें हम कुछ नहीं कर नहीं सकते। किंतु यह तो आमंत्रित मौतें हैं। ऐसा भी नहीं है कि जहरीली शराब के कारण पहली बार मौत हुई हों। आए दिन ऐसी खबरें आती रहती हैं। किसी हादसे के बाद कार्रवाई होती है, लेकिन कुछ अंतराल बाद ही कहीं न कहीं जहरीली शराब अपना कहर फिर बरपा देती है। प्रश्न है कि ऐसा क्यों होता है? हालिया एक हादसा तो सामाजिक कुरीति से जुड़ा है। उत्तराखंड में हरिद्वार के बालुपुर गांव में एक मृत्युभोज में शराब परोसी गई थी जो दुर्योग से जहरीली निकली। यह कैसी रीति है? आखिर मृत्युभोज में शराब परोसने का क्या औचित्य है? श्राद्धकर्म के पीछे मृतक की आत्मा की मुक्ति की भावना होती है। अगर शराब जहरीली नहीं होती तो वह इतनी बड़ी मानवीय त्रासदी का कारण नहीं बनती। उत्तर प्रदेश के सहारनपुर में तो कोई मृत्युभोज नहीं था, उत्तराखंड के रुड़की में भी ऐसा कार्यक्रम नहीं था। अभी तक की सूचना के अनुसार दोनों राज्यों में हजारों लीटर अवैध शराब बरामद की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश में 300 मामले दर्ज किए गए हैं और 175 से ज्यादा लोगों को गिरफ्तार किया जा चुका है। इसी तरह उत्तराखंड में करीब 50 मामले दर्ज किए गए। पुलिस कप्तानों पर गाज गिरी है तो वहीं तमाम आबकारी अधिकारियों-कर्मचारियों का निलंबन हो रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार अवैध शराब भट्ठियों और दुकानों को बंद कराने तथा माफियाओं के जाल को ध्वस्त करने के लिए 15 दिनों का अभियान चला रही है। जांच के लिए एसआईटी गठित हो चुकी है।

आखिर सरकारें या हम नागरिक भी त्रासदियों के बाद ही क्यों जागते हैं? उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले में ही हाल में जहरीली शराब पीने से 11 लोगों की मौत की खबर आई थी। वहां कार्रवाई भी हुई, किंतु सरकार और प्रशासन ने शायद यह मानकर राज्यव्यापी अभियान चलाने पर विचार नहीं किया कि अवैध शराब का कारोबार एक जिले तक ही सीमित है। वहां के पुलिस प्रशासन ने इसका ठीकरा बिहार पर फोड़ दिया। सीमावर्ती जिला होने के कारण यह कहना आसान है जबकि बिहार में शराबबंदी लागू है। वहां चोरी से शराब मिल सकती है, लेकिन भट्ठी लगाकर शराब बना पाना आसान नहीं है। अगर कुशीनगर की घटना के साथ ही सरकार और प्रशासन ने राज्यव्यापी अभियान चला दिया होता तो इतने लोगों की जिंदगी बच सकती थी।

हालांकि उत्तर प्रदेश सरकार ने आबकारी अधिनियम, 1910 में संशोधन करके उसे कड़ा बनाया था। इसके बाद तत्कालीन आबकारी मंत्री ने कहा था कि पड़ोसी राज्यों से शराब की तस्करी और अवैध शराब की वजह से प्रदेश के आबकारी राजस्व में भारी गिरावट आई है। यह भी दलील दी गई कि ऐसी अवैध जहरीली शराब पीने से जनहानि की घटनाएं भी हुई हैं। वस्तुतः शराब से राजस्व पाने की भूख हर राज्य में शराबखोरी को प्रोत्साहित करती है। पूरे देश की यही दशा है। हालिया घटनाओं के बाद जो रिपोर्ट मिली हैं उनसे साफ है कि जगह-जगह वैध-अवैध भट्ठियां चल रहीं हैं। वहां बनने वाली शराब की निगरानी करने वाला कोई नहीं है। कच्ची शराब बनाने के लिए पुराना गुड़ और शीरे के साथ महुआ आदि का प्रयोग तो आम बात है, लेकिन इन्हें इतना सड़ा दिया जाता है कि उनमें दुर्गंध आने लगती है और तब माना जाता है कि इससे ज्यादा नशीली शराब तैयार होगी। यह परंपरागत तरीका रहा है। वहीं हाल के वर्षों में यूरिया, आयोडेक्स, ऑक्सिटॉसिन से लेकर शराब को ज्यादा नशीला बनाने के लिए चूहे मारने वाली दवा और यहां तक कि सांप और छिपकली तक मिलाने के मामले भी पकड़ में आ चुके हैं। डीजल, मोबिल ऑयल, रंग रोगन के खाली बैरल और पुरानी हांडियों (बर्तन) के इस्तेमाल के साथ भैंस का दूध निकालने के लिए इस्तेमाल होने वाले ऑक्सिटॉसिन इंजेक्शन को भी मिलाया जाता है। इन सबके मिश्रण से बनी शराब से यदि तत्काल मौत न भी हो तो लीवर, गुर्दे, फेफड़ों और आंत जैसे अंगों को क्षति पहुंचती है। गुड़ और शीरे में ऑक्सिटॉसिन मिलाने से मिथाइल एल्कोहल बन जाता है। ज्यादा मिथाइल एल्कोहल से शरीर के अनेक हिस्से काम करना बंद कर देते हैं। ब्रेन डेड तक हो जाता है।

अवधेश कुमार

कुशीनगर मामले के बाद ही अवैध शराब के खिलाफ व्यापक अभियान चलता तो हालिया हादसे को रोका जा सकता था

भारत का ऐसा शायद ही कोई राज्य हो जहां से देसी शराब में ऐसी जहरीली सामग्रियों के मिश्रण के सबूत नहीं मिले हों। यदि ऐसा हो रहा है तो फिर इसके लिए किसे दोषी कहा जाएगा? बिना प्रशासन की मिलीभगत के इतने बड़े पैमाने पर यह संभव ही नहीं। जिनको भट्ठी का लाइसेंस मिलता है वे भी किन सामग्रियों का उपयोग करते हैं इसका ध्यान रखना आबकारी विभाग का दायित्व है। आबकारी विभाग सख्त हो तो जहरीली सामग्री मिलाने का साहस कोई कर ही नहीं सकता। वहीं अवैध भट्ठियां कैसे चलतीं हैं यह बताने की आवश्यकता ही नहीं। अगर सरकारें सख्त और इसके प्रति सचेत रहें और प्रशासन को उसका दायित्व याद रहे तो ऐसी घटनाएं हो ही नहीं सकतीं। ऐसा लगता ही नहीं कि केंद्र या राज्य सरकारों की प्राथमिकता में देसी शराबों में जहरीली सामग्रियों के उपयोग तथा अवैध शराब को रोकना शामिल है। वहीं समाज भी ऐसे तत्वों के खिलाफ संगठित होकर आवाज क्यों नहीं उठाता? अनेक प्रदेशों में महिलाओं ने शराब के खिलाफ आंदोलन किया है, पर उनकी आवाज नक्कारखाने में तूती बन जाती है, क्योंकि पूरे समाज का साथ उन्हें नहीं मिलता। आज पूरे देश का ढांचा ऐसा हो गया है कि कोई एक राज्य नशे पर रोक लगाने का कदम उठाता है तो उसे कहीं से सहयोग नहीं मिलता और वह विफल हो जाता है। मुख्य खलनायक तो नशे के लिए कुछ सामग्रियों को कानूनी रूप से मान्य कर देना है। विरोध करने पर राजस्व का तर्क दिया जाता है। मगर नशे के कारण जो बीमारियां होतीं हैं, अपराध होते हैं, सामाजिक अशांति बढ़ती है उन पर होने वाले खर्च की तुलना करने का साहस सरकारे करें तो राजस्व का सच सामने आ जाएगा।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)
response@jagran.com

ऊर्जा

अध्यात्म और विज्ञान

इस जगत में अज्ञात से सब ज्ञात हुआ है। युगों-युगों से मनुष्य इस पृथ्वी पर जीवन यापन करता चला आ रहा है। पहले वह धरा पर सादगी धारण कर शांतिपूर्वक तरीके से अपनी जीवन रूपी नौका को चलाता रहता था। कम आकांक्षाएं, सरल जीवन उसके मन, मस्तिष्क को बाह्य जगत के थपेड़ों से बचाए रखती थीं। उसकी ज्यादातर चेष्टाएं आंतरिक होती थीं। आंतरिक विचारों के साथ संयुक्त होकर अपने जीवन को बाह्य जगत के साथ यथायोग्य सामंजस्य बिठाकर वह आगे बढ़ता रहता था। इसमें वह सच्चे अर्थ में धर्म एवं अध्यात्म की आडंबर रहित परिपाटी की बागडोर थामकर उच्च विचारों के साथ संयुक्त रहता था। अब वर्तमान परिवेश पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि विज्ञान की खोज के माध्यम से भौतिक जगत में शरीर के उपयोग के लिए सभी कुछ उपलब्ध हो गया है। इस भौतिक जगत की उन्नति एवं प्रगति को देखकर मानव मोहित हो रहा है। वह पूर्ण सत्य को पीछे करके इसका सारा श्रेय विज्ञान को प्रदान कर देता है।

यह सच है कि विज्ञान की खोज के परिणामस्वरूप बहुत सी ऐसी चीजें प्राप्त हुई हैं जिनसे मानव जीवन को काफी सहायता मिलती है, वे जीवन में उपयोगी होने के साथ-साथ जीवन में सुगमता भी पैदा करती हैं, लेकिन अब उसे यहां अहंकार की बीमारी लग गई है। वह यह करने लग गया है कि जो विज्ञान की कसौटी पर परिणाम देने वाला नहीं होगा, वह सब असत्य है। उसका यह भी कहना है कि अब वैज्ञानिक सोच विकसित हो गई है। इसलिए दुनिया विज्ञान की सोच से ही चलेगी। विज्ञान की भौतिक उपलब्धि की चकाचौंध में वह परमेश्वर द्वारा रचित इस संसार में उसकी कृति की उपेक्षा करने लगा है।

विज्ञान की आंख से देखने वालों को यह समझना आवश्यक है कि विज्ञान की आयु चार-पांच सौ वर्ष से अधिक नहीं है। इस छोटी आयु में विज्ञान के माध्यम से जो उपलब्धि हुई है वह मूल रूप में पहले से ही विद्यमान थी। इस संसार में मनुष्य जितना जान पाया है उससे कहीं ज्यादा छिपा हुआ है, अदृश्य है। अतः यह समझकर चलना चाहिए कि अखिल ब्रह्मांड के स्वामी पूर्ण परमेश्वर हैं। इसलिए आज की भौतिक प्रगति को देखकर शांत भाव धारण करते हुए अपनी आत्मिक उन्नति का प्रयास भी करना चाहिए।

अशोक वाजपेयी

सकारात्मक सोच से मिलती है खुशी

डॉ. कुमारेंद्र सिंह सेंगर

यदि नकारात्मकता दूर करने से खुशी का जन्म होता है तो फिर ध्यान रखें कि सकारात्मकता समाप्त होने से ही दुख का उदय हुआ है

खुशी शब्द देखने में जितना छोटा है, उसकी उतनी ही व्यापकता है। सभी के लिए खुशी के अलग-अलग मायने हैं, अलग-अलग संदर्भ हैं। किसी के लिए बहुत ही छोटी समझी जाने वाली स्थिति से बहुत बड़ी सी खुशी उत्पन्न हो सकती है तो किसी के लिए बड़ी से बड़ी स्थिति भी खुशी पैदा नहीं कर पाती है। खुशी एक स्थिति कही जा सकती है जो व्यक्ति को खुश रहने का अवसर उपलब्ध करवाती है। इस अवसर का स्वरूप कुछ भी हो सकता है, कैसा भी हो सकता है।

कई बार लगता है कि मानव स्वभाव इस तरह का है ही कि वह खुशी को बहुत लंबे समय तक अपने साथ रख नहीं पाता है। उसके ऊपर किसी न किसी दुख को, कष्ट को, नाखुशी को बैठा देता है। उसके सामने एक पल में एक साथ आने वाली खुशी और गम में वह उस गम को जिंदगी भर ढोता रहता है, जबकि उसी समय साथ आई खुशी को तत्काल भुला बैठता है। यदि नकारात्मकता दूर करने के परिणामस्वरूप खुशी का जन्म होता है तो फिर ध्यान रखना होगा कि सकारात्मकता समाप्त होने से ही दुख का उदय हुआ है। ऐसे में उसी सकारात्मकता को पुनः क्यों नहीं प्राप्त किया जाता है? क्यों नहीं दुख के मूल में छिपे नकारात्मक भाव को दूर करके खुशी को गले लगाया जाता है? भारतीय समाज में बहुधा देखने में आता है कि एक दुख के साये में व्यक्ति पूरी जिंदगी बिता देता है। उसका रहन-सहन, उसकी जीवन-शैली, उसकी कार्यशैली, उसकी दिनचर्या आदि सबकुछ उसी एक दुख के द्वारा संचालित होने लगती हैं। ऐसे में उसी नकारात्मकता को दूर करने की आवश्यकता है जिसके दूर होने से खुशी मिली थी। उसी सकारात्मकता को बनाए रखने की जरूरत है जिसके न होने से दुख दिखाई देने लगा है।

खुशी या दुख पूरी तरह से व्यक्ति की अपनी मानसिक अवस्था है। ऐसे में उसे अपने वर्तमान के साथ जीवन जीने की कला सीखने की आवश्यकता है। जो व्यक्ति अपने वर्तमान में अतीत की परेशानियों को खींच ले आते हैं और उसी वर्तमान को बोझ बनाकर भविष्य तक ले जाना चाहते हैं वे खुशी का आनंद नहीं ले पाते हैं। खुशी को दीर्घजीवी भी बनाया जा सकता है बशर्ते उसका स्वरूप स्वतंत्र छोड़ना होगा। उसे किसी भी तरह के दुख के साये में पलने को नहीं छोड़ना होगा। हमें हमारी खुशी हमारी भावनाओं में खोजनी होगी। हमें हमारी खुशी के लिए अपने जीवन की कठिनता को छोड़ना होगा।

खुशियों को लंबे समय तक साथ बनाए रखने के लिए व्यक्ति को दिखावे की संस्कृति से दूर होना पड़ेगा। व्यक्ति को उन्हीं कामों की तरफ खुद को एकाग्र करने की आवश्यकता है जो उसके दिल-दिमाग को पसंद आते हों। आवश्यक नहीं कि सिर्फ धनोपार्जन के लिए ही काम किया जाए। ऐसे काम करने के साथ-साथ अपनी खुशी को लंबा बनाने के लिए वे काम भी करने चाहिए जिन्हें शौक कहा जा सकता है, पसंद कहा जा सकता है, पैशन कहा जा सकता है। इस तरह के क्रियाकलापों से, व्यवहार से, प्रक्रिया से खुशी प्राप्त की जा सकती है। किसी भी व्यक्ति को इसका आभास होना ही होना चाहिए कि खुशी उसके भीतर ही है, बस उसे देखने-समझने की आवश्यकता है।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

लोककल्याण का पर्याय हो राजनीति

उदय प्रकाश अरोड़ा ने अपने आलेख 'स्वयं में सुधार से दूर भागते दल' के माध्यम से देश की राजनीति की चिंताजनक स्थिति को उजागर किया है। वास्तव में किसी देश के विकास की जिम्मेदारी उन राजनेताओं के हाथों में ही होती है, जिनका चुनाव जनता करती है। दरअसल जनता उस राजनीतिक पार्टी को ही चुनती है, जिस पर उसे विश्वास होता है कि वह उनकी बुनियादी जरूरतों को पूरा कर सकेगी। यदि वह पार्टी उनके उम्मीदों पर खरा उतरती है तो यह जनता और देश, दोनों की जीत होती है। देखा जाए तो आज हमारे देश की ज्यादातर आबादी गरीबी रेखा के नीचे है। उसके पास आधुनिक संसाधनों का अभाव है। जब तक यह तबका संसाधनों से लैस नहीं होगा, विकास की सीढ़ियां नहीं चढ़ सकेगा। गौरतलब है कि देश के संपूर्ण विकास के लिए भारत के हर तबके के लोगों का विकास जरूरी है। एक सच्चे राजनीतिज्ञ के लिए उसका देश ही संपूर्ण कुटुंब सरीखे होता है, इसलिए उसका कर्तव्य होना चाहिए कि वह स्वयं के लाभ के लिए नहीं, अपितु देशवासियों के हित के लिए सोचे। देश के राजनेता जब ईमानदारी से काम करेंगे तो नागरिक भी स्वयं ईमानदार हो जाएंगे तथा इसका असर सकारात्मक होगा। इसलिए सत्तारूढ़ पार्टियों को जनता के विश्वास को जीतने के लिए सदैव देशहित और लोक कल्याण को ध्यान में रखकर कार्य करना चाहिए।

सौरभ पाठक, ग्रेटर नोएडा

सोमनाथ और राम मंदिर निर्माण की स्थिति

अयोध्या पर अनुदार सोच का प्रदर्शन शीर्षक से बीते दिनों लिखे अपने आलेख में मनमोहन वैद्य ने राम मंदिर निर्माण को लेकर लगाई जाने वाली अटकलों को स्वतंत्र भारत में सोमनाथ मंदिर के पुनरुद्धार से जोड़कर जो तथ्यात्मक स्थिति स्पष्ट की है, वह अपनी जगह सही है, क्योंकि पिछले 70 वर्षों से भारतीय आस्था के प्रतीक राम मंदिर के निर्माण में जो अड़चनें पैदा की जा रही हैं वह एक अनुदार मानसिकता का प्रतिफलन है। ऐसे में प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि भारत के बहुसंख्यक हिंदू वर्ग की आस्था के संबंध में क्या इस तरह की अनुदार मानसिकता का प्रदर्शन उचित है? इस संदर्भ में यह कहना भी समीचीन होगा कि छह दिसंबर, 1992 की घटना राम मंदिर निर्माण के संबंध में प्रदर्शित की गई ऐसी ही अनुदार मानसिकता के प्रति सामूहिक आक्रोशजनित प्रतिकार था। भारत के सांस्कृतिक भाव-बोध से समन्वित आध्यात्मिक संचेतना इस देश की प्राण-वायु है। सरकारी सहयोग के बिना सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण भारतीय समाज की इसी आध्यात्मिक संचेतना का सुपरिणाम था। देश के तत्कालीन गृहमंत्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने सोमनाथ मंदिर के जीर्णोद्धार के संदर्भ में तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की उदासीनता और अनुदार दृष्टिकोण के बावजूद भारतीय समाज के सहयोग से सोमनाथ मंदिर का कायाकल्प कर दिया था, लेकिन राम जन्म-भूमि विवाद को न्यायालय ले जाकर राम मंदिर निर्माण की स्थिति सोमनाथ मंदिर से भिन्न बना दी गई है। अब इस देश का बहुसंख्यक वर्ग चाहकर भी सोमनाथ मंदिर की तरह सामाजिक सहयोग से राम मंदिर का निर्माण नहीं कर सकता, क्योंकि वर्तमान में राम मंदिर निर्माण की परिस्थितियां विगत में पुनर्निर्मित सोमनाथ मंदिर से सर्वथा भिन्न हैं।

pandeyvp1960@gmail.com

लोग समझें नदी का महत्व

नदियों के मुक्त बहाव की महत्ता शीर्षक से लिखे अपने लेख में डॉ. भरत झुनझुनवाला ने गंगा को जल विद्युत परियोजना के लिए प्रयोग करना अनुचित बताया है। दरअसल गंगा पर बने लगभग 900 से अधिक बांध और बैराज इसके प्रवाह को बाधित कर रहे हैं, जो कि गंगा के लिए खतरा हैं। सरकार को गंगा की साफ-सफाई की तरफ गंभीरता नहीं दिखानी है तो न दिखाए, लेकिन कम से कम इसके मुक्त बहाव में रुकावट तो पैदा न करे। महात्मा गांधी ने कहा था कि नदियां हमारे देश की नाड़ियों की तरह हैं। यदि हम उन्हें गंदा करना जारी रखेंगे तो वे दिन दूर नहीं जब हमारी नदियां जहरीली हो जाएंगी। और अगर ऐसा हुआ तो हमारी सभ्यता नष्ट हो जाएगी। जिस दिन देश का हरेक नागरिक यह समझ जाएगा कि उसका अस्तित्व नदियों की वजह से भी ही है, उस दिन से कोई भी नदियों में गंदगी नहीं डालेगा। और उसी दिन से नदियों की साफ-सफाई के सरकारी एवं गैरसरकारी प्रयास कामयाब होंगे। दुनिया के कई देशों में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।